# भारत में सार्वजनिक वितरण प्रणाली और इसका गरीबी पर प्रभाव : एक अध्ययन

**राकेश कुमार**
शोध–छात्र, अर्थशास्त्र,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर।

**सारांश**

मुद्रा स्फीति एवं अनिवार्य वस्तुओं की पूर्ति संकट के सन्दर्भ में सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विकास हुआ। प्रदेश के अधिकांश नागरिक खाद्यान्न एवं रोजमर्रा की आवश्यक सामग्री आसानी से नहीं जुटा पाते हैं। विशेषकर गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले ग्रामीण निर्धन जिनके लिए एक प्रभावी रणनीति की आवश्यकता को समझते हुए सार्वजनिक वितरण प्रणाली का शुभारंभ किया गया।

**कुंजी शब्दः**

*खाद्य सुरक्षा, मुद्रा स्फीति, सार्वजनिक वितरण प्रणाली, गरीबी उन्मूलन, कुपोषण, कीमत स्थिरीकरण।*

**भूमिका**

स्वतंत्रता के पूर्व सरकार ने युद्ध के समय के अतिरिक्त किसी भी समय मूल्य नीति को नहीं अपनाया था, और न ही किसी प्रकार का नियंत्रण किसी भी वस्तु पर लगाया गया था। राशनिंग प्रणाली को सरकार ने जनता के सम्मुख द्वितीय विश्व युद्ध के दौरान रखा। इसके पूर्व तो सरकार ने इस ओर कोई ध्यान ही नहीं दिया और न ही उस समय इस प्रकार की कोई प्रणाली प्रचलित ही थी। स्वतंत्रता के पश्चात् सरकार ने खाद्य सामग्री खरीद समिति 1950 के द्वारा खाद्य नीति को अपनाया, जिसे एकाधिकारी खरीद एवं राशनिंग व्यवस्था पर बल दिया गया। यह संस्तुति उचित खाद्य स्थिति की पूर्ति को बनाए रखने के लिए की गई थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान खाद्य सामग्री के उत्पादन में काफी वृद्धि हुई। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकार ने सार्वजनिक वितरण के सम्बन्ध में जो भी सम्भव था, उसको अपनाया। 1955–56 में आवश्यक वस्तुओं की कमी का अनुभव किया जाने लगा, और इसके मूल्यों में भी बहुत तेजी के साथ वृद्धि होने लगी। इससे निपटने के लिए सरकार ने 1957 में एक खाद्य समिति श्री अशोक मेहता की अध्यक्षता में नियुक्ति की। इसका कार्य यह था कि वह मूल्यों में बढ़ने के कारणों का पता लगावे। उत्पादन के बढ़ने पर भी मूल्यों में वृद्धि क्यों होती है? समिति को सरकार को समय–समय पर सलाह भी देना था कि किन कारणों से असामायिक रूप से जमा खोरी बढ़ती है। इस समिति का विचार यह था कि जब तक सरकार व्यापार पर पूर्ण सामाजिक नियंत्रण नहीं करती तब तक वह मूल्यों में स्थायित्व नहीं ला सकती। थोक व्यापारी जब अपने मूल्यों को बढ़ा देंगे तो फुटकर व्यापारियों को तो अपने मूल्यों को बढ़ाना ही पड़ेगा। इसके सुझाव में यह भी था कि खाद्य सामग्री के मूल्यों में स्थायित्व लाने के लिए खाद्य सामग्री का बंपर स्टॉक काफी हद तक सहायता प्रदान करेगा। यह मूल्यों में स्थायित्व लाने में एक यंत्र के रूप में कार्य कर सकता है।[1]

कहना न होगा कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य 1960–70 के दशक में खाद्य–दुर्लभता के समय उपभोक्ता के लिए एक कीमत आलम्बन कार्यक्रम का काम करना था। अतः इस प्रकार यह कीमत–स्थिरीकरण (च्तपबम"जंइपसपेंजपवद) के उपकरण के रूप में कार्य करने लगी और निजी व्यापारियों के विरुद्ध एक प्रतिशक्ति के रूप में उभरी क्योंकि व्यापारी दुर्लभता की स्थिति का फायदा उठाते हुए अपने लाभ को अधिकाधिक करने का प्रयास करते थे। इसका मूल उद्देश्य अनिवार्य वस्तुओं अर्थात् चावल, गेहूॅं, चीनी, खाद्य तेल, सॉफ्ट कोक और मिट्टी का तेल साहाय्यित दरों ँ(नइेपकप्रमक त्ंजमे) पर उपलब्ध कराना था।[2]

1980–90 के दशक के मध्य में सार्वजनिक वितरण प्रणाली (च्नइसपब क्पेजतपइनजपवद"लेजमउ) का विस्तार कुछ राज्यों में ग्राम क्षेत्रों में किया गया। इस प्रकार इसे कल्याणकारी कार्यक्रम का दर्जा दिया गया। 1985 में यह प्रयास किया गया कि सभी जनजाति ब्लॉकों में जिनकी जनसंख्या लगभग 5.7 करोड़ है, सस्ती दर पर खाद्यान्न उपलब्ध कराए जायें। देश में आज 4.62 लाख उचित मूल्य की दुकानों का नेटवर्क बन गया है जो 30,000 करोड़ रुपये की वस्तुएॅ प्रति वर्ष वितरित करती है। अतः भारतीय सार्वजनिक वितरण प्रणाली संभवतः विश्व में सबसे बड़ा वितरण–नेटवर्क (क्पेजतपइनजपदव दमजूवता) है। कई रोजगार जनन कार्यक्रमों में मजदूरी के अंग के रूप में साहाय्यित खाद्यान्न वितरित किये गये।[3]

**सार्वजनिक वितरण विक्रय में विभिन्न मदों का सापेक्ष भाग**

चाहे चावल, गेहूं, चीनी, खाद्य तेल, सॉफ्ट कोक और मिट्टी का तेल सार्वजनिक वितरण प्रणाली की दुकानों पर बेचे जाते हैं किन्तु इनमें से चार मदों अर्थात् चावल, गेहूं, चीनी और मिट्टी का तेल कुल विक्रय मे भाग 86 प्रतिशत है। केवल चीनी का भाग 35 प्रतिशत, चावल का 27 प्रतिशत, गेहूं का 10 प्रतिशत और मिट्टी के तेल का 15 प्रतिशत है। मोटे अनाज (बाजरा, ज्वार और अन्य अनाज) जिनका उपभोग गरीब वर्गों द्वारा किया जाता है का कुल विक्रय में 1 प्रतिशत भाग से भी कम है। दालें जो गरीबों के लिए प्रोटीन का मुख्य स्रोत है का भाग 0.2 प्रतिशत से भी कम है। डॉ.एम.एच. सूर्यनारायण इस कारण ही सही निष्कर्ष पर पहुॅंचते हैं: ''इस सामान्य धारणा में कुछ बल अवश्य है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की वस्तु–रचना ऐसी है कि इनका उपभोग ज्यादातर समाज के सापेक्षतः समृद्ध वर्गों द्वारा किया जाता है।''[4]

**अनाज उपभोग और खाद्य सुरक्षा**

गरीब वर्गों में कुपोषण को कम करने के लिए यह जरुरी है कि गरीबों का उपभोग ढॉचा जो अनाज उपभोग तक अवरुद्ध रहा है, पोषक गैर–अनाज मदों की ओर बदला जाए। यह तभी करना चाहिए जब आई.सी.एम.आर. द्वारा निर्धारित न्यूनतम अनाज उपभोग का निर्वाह स्तर प्राप्त कर लिया जाए। पहली अवस्था में खाद्य–सुरक्षा का अर्थ 11.58 कि.ग्रा. का न्यूनतम स्तर प्राप्त करना है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि निम्नतम दशमक में यह स्तर भी ग्राम क्षेत्रों में प्राप्त नहीं किया जा सका और शहरी क्षेत्रों में 1990 तक भी यह न्यूनतम

स्तर 30 प्रतिशत निम्नतम जनसंख्या को प्राप्त नहीं हो सका। यह हमारे देश की खाद्य–सुरक्षा पर एक चिन्ताजनक और दुःखभरी टिप्पणी है।[5]

**सार्वजनिक वितरण प्रणाली और गरीबों के लिए खाद्य सुरक्षा**

राधाकृष्ण और उनके सहकर्मियों ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 42वें रौंद के आधार पर 1986–87 के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली के गरीबों पर प्रभाव का अध्ययन किया है। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है[6]:

(क) बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे पिछड़े राज्यों को सार्वजनिक वितरण प्रणाली की व्यवस्था से लगभग बाहर कर देना और

(ख) केरल और आंध्र प्रदेश जैसे राज्यों में सार्वजनिक वितरण प्रणाली से क्रय सभी व्यय–वर्गों में सापेक्षतः ऊँचे थे। केरल में इस प्रणाली से खरीद की मात्रा अनाज–उपभोग के 40 से 58 प्रतिशत तक थी। चाहे बहुत गरीब सार्वजनिक वितरण प्रणाली पर 58 प्रतिशत की ऊँची सीमा तक निर्भर थे, परन्तु गैर निर्धनों (छवद.च्ववत) को 1986–87 में इस योजना के सर्वव्यापक स्वरूप के परिणामस्वरूप 40 प्रतिशत की सीमा तक लाभ प्राप्त हुआ। इस दृष्टि से यह योजना ग्राम क्षेत्रों में प्रतिगामी थी। लगभग इसी प्रकार का ढॉचा शहरी क्षेत्रों में विद्यमान था।

(ग) केरल और आंध्र प्रदेश में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रभावी फैलाव की तुलना मे अखिल भारतीय औसत कम थी; प्रति व्यक्ति मासिक क्रय ग्राम क्षेत्रों में 0.88 कि.ग्रा. था और शहरी क्षेत्रों में 1.34 कि.ग्रा.

(घ) चूंकि सार्वजनिक वितरण वितरण प्रणाली से मासिक क्रय सभी राज्यों में बहुत गरीब वर्गों के लिए, ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्र में, बहुत कम है, इस कारण राधाकृष्ण इस निष्कर्ष पर पहुॅचते हैं : ''प्रभावी फैलाव और अर्थसाहाय्य के रूप में किया गया अतिरिक्त राज्य–स्तर पर व्यय इस बात की गारंटी नहीं देता कि बहुत गरीब वर्गों की बेहतर मदद की जा रही है। निष्कर्ष साफ है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली खर्चीली और अधिकतर अलक्षित ही रही है। इस प्रकार केन्द्रीय महत्व का प्रश्न यह हैः सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से किस प्रकार प्रभावी रूप में गरीबों को कम लागत पर खाद्य उपलबध कराने में सुधार किया जा सकता है। नीति की दृष्टि से बहुत गरीब और मर्यादित रूप से गरीब वर्गों में भेद होना चाहिए और यह प्रयास किया जाना चाहिए कि बहुत गरीब लोगों को किस प्रकार खाद्य पहुॅचाए जा सकते हैं।

**सार्वजनिक वितरण प्रणाली का संभरण और विकास**

सार्वजनिक वितरण प्रणाली में जारी कीमत को बढ़ाने के परिणामस्वरूप इससे अनाज–निकासी पर दुष्प्रभाव पड़ा क्योंकि साहाय्यित जारी कीमत और खुले बाजार की कीमत में अन्तर कम हो गया। अतः सभी राज्यों में निकासी केन्द्रीय आवंटन से कम रही।

परन्तु कई सरकारों द्वारा साहाय्यित सार्वजनिक वितरण प्रणाली की योजना को लागू करने की बदस्तूर नीति के कारण इन राज्यों में इस प्रणाली के अधीन अधिक क्रय किया गया। ये राज्य हैंः केरल और आंध्र प्रदेश। स्वर्गीय एन.टी. रामाराव द्वारा चावल 2 रुपये प्रति किलोग्राम की आंध्र प्रदेश की योजना इस संदर्भ

में उल्लेखनीय है। केरल ने भी बड़े जोश से साहाय्यित सार्वजनिक खाद्यान्नों की योजना को कार्यान्वित करने पर बल दिया। विश्व बैंक की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया : ''बिहार, उड़ीसा और मध्य प्रदेश जैसे गरीब राज्यों में केन्द्रीय आवंटन की तुलना में क्रय में महत्वपूर्ण अन्तर का कारण कुछ हद तक केन्द्रीय जारी कीमत और बाजार कीमत में थोड़ा ही अन्तर था और कुछ हद तक इन राज्यों की कमजोर राजकोषीय सामर्थ्य थी, जिसके द्वारा वे जारी कीमतों को कम करके इसके लिए अतिरिक्त साहाय्य उपलब्ध कराके वित्त जुटा सके। इसके अतिरिक्त इन राज्यों ने प्रभावी संस्थानात्मक प्रक्रिया तैयार नहीं की जिसके माध्यम से वे भारतीय खाद्य निगम से उचित कीमत की दुकानों तक माल पहुँचा सके। यह बड़ी विडम्बना है कि जिन राज्यों में गरीबी का आपात अधिक है, उन्हीं राज्यों में भारतीय खाद्य निगम से क्रय सबसे नीचा है।''[7]

**सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा गरीबों के आय–हस्तांतरण**

सार्वजनिक वितरण प्रणाली का मुख्य उद्देश्य राशन की दुकानों, उचित मूल्य की दुकानों और नियंत्रित कीमत की दुकानों द्वारा सस्ती कीमत पर अनिवार्य वस्तुएँ उपलब्ध कराकर आय–हस्तांतरण करना है। आय–हस्तांतरण की मात्रा सार्वजनिक वितरण प्रणाली से किये गये क्रय को जारी कीमत और बाजार कीमत के अन्तर से गुना करने से प्राप्त की जा सकती है। इस विधि के आधार पर राधाकृष्ण ने यह निष्कर्ष निकाला : ''सार्वजनिक वितरण प्रणाली द्वारा दिए गए सभी सहाय्यों से ग्राम क्षेत्रों से आय–हस्तांतरण रूपया 2.30 प्रतिमास था जो कि 1986–87 में प्रति व्यक्ति गैर–सरकारी उपभोग व्यय का 1.6 प्रतिशत था और शहरी क्षेत्रों में 3.68 रुपये अर्थात् व्यय का केवल 1.7 प्रतिशत। गरीबों के लिए आय–हस्तांतरण ग्राम क्षेत्रों में 2.0 रुपये और शहरी क्षेत्रों में 3.4 रुपये था। अतः खाद्य–साहाय्य के परिणामस्वरूप विषमता को कम करने में कोई महत्वपूर्ण योगदान न दिया जा सका। इस सारे विश्लेषण का सार यह है कि समग्र देश के लिए आय–हस्तांतरण द्वारा लाभ गरीब वर्गों के लिए नाममात्र थे। इसका मुख्य कारण निर्धनता के ऊँचे आपात वाले राज्यों में इसका महत्वहीन प्रभाव था। आंध्र प्रदेश और केरल में गरीबों को काफी लाभ हुआ, परन्तु यह लाभ गैर–निर्धनों को भी उपलब्ध हुआ और इसलिए इस योजना का प्रभाव प्रतिगामी था।[8]

**सार्वजनिक वितरण प्रणाली का निर्धनता पर प्रभाव**

राधाकृष्ण रिपोर्ट ने सार्वजनिक वितरण प्रणाली का गरीबी को कम करने के रूप में प्रभाव का अध्ययन किया है। उनका कहना है कि ''समग्र भारत पर विचार करें तो सभी उपभोक्ता साहाय्यों का निर्धनता पर प्रभाव मर्यादित था, साहाय्यों ने निर्धनता को ग्राम क्षेत्र में 1.66 प्रतिशत और शहरी क्षेत्रों में 1.71 प्रतिशत से कम किया। लगभग 121 लाख व्यक्ति (94 लाख ग्राम क्षेत्रों में और 27 लाख शहरी क्षेत्रों में) 1986–87 में सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आय–हस्तांतरण के परिणामस्वरूप निर्धनता रेखा के ऊपर आ गए... कुल रूप में गरीबों की जनसंख्या बहुत अधिक होने के कारण (1986–87 में 2.740 लाख), यह संख्या बहुत छोटी जान पड़ती है।[9]

**सार्वजनिक वितरण प्रणाली और बीस सूत्रीय कार्यक्रम**

यदि वास्तविक रूप में समाज के कमजोर वर्गों को वस्तुऍ उपलब्ध कराना है तो उसके लिये यह आवश्यक है कि उत्पादन में वृद्धि के साथ ही साथ उसके वितरण की भी समुचित व्यवस्था हो। वितरण की समुचित व्यवस्था के बिना उत्पादन का अधिक होना मात्र कुछ विशेष व्यक्तियों के हितों में ही होगा, इसलिये एक प्रभावकारी वितरण व्यवस्था का होना नितान्त आवश्यक है। उत्पादन में वृद्धि तथा वितरण व्यवस्था में सुधार से विकासशील अर्थव्यवस्था के दो पहलुओं पर प्रभाव पड़ता है, एक पहलू तो आर्थिक तथा दूसरा सामाजिक। इन दोनों पहलुओं के प्रभाव के परिणामस्वरूप निर्धन वर्ग को सस्ते दर पर आवश्यक वस्तुऍ उपलब्ध करायी जाती हैं तथा दूसरी ओर उनके रहन–सहन का स्तर भी ऊँचा उठता है। एक ओर उत्पादन में वृद्धि से पूर्ति में भी वृद्धि होती है और मूल्यों में कमी आती है वहीं दूसरी ओर रोजगार व आय में भी वृद्धि के पर्याप्त अवसर होते हैं। समुचित वितरण से उपभोक्ताओं को आय अधिक महसूस होगी, जिसके फलस्वरूप बचतें प्रोत्साहित होंगी और इन बचतों को देश के विकास कार्यों में लगाया जायेगा और सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था विकास की ओर तेजी से गतिमान होगी। जुलाई 1975 देश की समग्र आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति के लिये तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा 20 सूत्रीय आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा की गयी थी जिसमें आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति के लिये निम्न चार सूत्रों को शामिल किया गया था[10]:–

- आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों को कम करने के लिये प्रयास करना इसके साथ ही साथ आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन, परिवहन, भण्डारण और वितरण में समन्वय स्थापित करना।
- जनता कपड़े की किस्म और आपूर्ति में सुधार करना।
- विद्यार्थियों को छात्रावासों में आवश्यक वस्तुऍ नियंत्रित भावों पर उपलब्ध कराना।
- नियंत्रित भावों पर पुस्तकें व लेखन सामग्री सुलभ कराना।

बीस सूत्रीय कार्यक्रम के क्रियान्वयन में उपभोक्ता सहकारिताओं का सक्रिय सहयोग प्राप्त करने हेतु केन्द्र सरकार ने उपभोक्ता सहकारिता के ढ़ॉचें को सुदृढ़ करने के लिए पर्याप्त प्रोत्साहन दिया जा रहा है। राजनैतिक कारणों से इस 20 सूत्री कार्यक्रम के क्रियान्वयन में 1977 से अवरोध आ गया। 14 जनवरी 1982 को इस कार्यक्रम को नया रूप देकर घोषित किया गया। आवश्यक वस्तुओं के उत्पादन और वितरण की दृष्टि से इस कार्यक्रम में चार अन्य सूत्र शामिल किये गये वे इस प्रकार हैं[11]:–

- दालों और तिलहन की पैदावार के लिये विशेष उपाय करना।
- उचित मूल्य की दुकानों की संख्या बढ़ाकर और दूर–दराज के इलाकों में चलती–फिरती दुकानों की व्यवस्था करके, औद्योगिक क्षेत्रों में काम करने वाले मजदूरों और छात्रावासों में रहने वाले विद्यार्थियों की आवश्यकताऍ पूरी करने के लिए दुकानें खोलकर सार्वजनिक वितरण प्रणाली का विस्तार करना, छात्रों को पाठ्य–पुस्तकें तथा कापियॉ प्राथमिकता के आधार पर उपलब्ध कराना और उपभोक्ता की जरुरतें पूरी करने के लिए भरसक प्रयास करना।

- तस्करों, जमाखोरी और कर की चोरी वालों के विरूद्ध कड़ी कार्यवाही जारी रखना और काले–धन को रोकना।
- सार्वजनिक उद्योगों में कार्य कुशलता–क्षमता का उपयोग और आन्तरिक साधन जुटाने की शक्ति बढ़ाकर उनकी कार्यप्रणाली में सुधार लाना।

सार्वजनिक वितरण प्रणाली के सफल संचालन के लिये वर्तमान संगठन को नया रूप देकर सुदृढ़ करना आवश्यक है। संशोधित 20 सूत्री कार्यक्रम में यह बताया गया कि अधिक दुकानें खोलकर, उपभोक्ताओं को आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कराई जायेंगी। ये दुकानें अधिकतर दुर्गम स्थानों पर और ग्रामीण क्षेत्रों में ही खोली जायेंगी। यदि आवश्यकता हुई तो कुछ दुकानों का स्वरूप चलता–फिरता भी होगा, जिससे कि समाज में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति उचित मूल्य पर की जा सके, जिससे कि यह प्रणाली देश की अर्थव्यवस्था का स्थायी सशक्त और विश्वसनीय पहलू बन सके। इसके साथ ही साथ उपभोक्ताओं के हितों की रक्षा के लिए उपभोक्ता सुरक्षा अभियान को बढ़ावा देने की भी व्यवस्था की गयी है। इस विशाल देश में परिवहन की कठिनाइयों और अन्य कुछ मूलभूत समस्याओं के कारण कुछ समय तक तो स्थानीय अभाव अवश्य पैदा हो जाता है। परन्तु स्थिति की लगातार समीक्षा करते रहने और आवश्यक वस्तुओं की पूर्ति तथा वितरण एवं उसके मूल्यों पर बराबर नजर रखने की आवश्यकता है। इसके लिए केन्द्र में एक विशेष विभाग की स्थापना की गयी है और स्थानीय असंतुलनों को दूर करने के कारगर सिद्ध हुआ है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि इस व्यवस्था को सुदृढ़ किया जाए और उसके साथ ही साथ इसका बड़े पैमाने पर भी विस्तार करना आवश्यक है।[12]

**निष्कर्ष**

उपरोक्त विश्लेषण से साफ है कि सार्वजनिक वितरण प्रणाली की सफलता उसकी कार्यक्षमता पर निर्भर करती है कि उसका क्षेत्र कितना विस्तृत है, उसकी क्षमता क्या है, कितनी मात्रा में आवश्यक वस्तुओं का एकत्रीकरण सरकार कर सकती है जितनी मात्रा में वह वस्तुओं का एकत्रीकरण या खरीद करती है उतनी मात्रा, शहरी व ग्रामीण क्षेत्र की उन वस्तुओं से आवश्यकता की पूर्ति संभव हो जाएगी। यदि ऐसा नहीं है तो सार्वजनिक वितरण व्यवस्था सफल नहीं हो सकती। सार्वजनिक वितरण प्रणाली को यदि उपयुक्त बनाना है तो खरीद की नीति को एक सुव्यवस्थित तरीके से लागू करना होगा। खरीद–कार्य तो सार्वजनिक वितरण प्रणाली व्यवस्था की जीवन– वाहिनी है। बिना इसके सार्वजनिक वितरण प्रणाली चल ही नहीं सकती। आवश्यकता इस बात की है कि इसके महत्व को समझा जाए और योजनाबद्ध तरीके से लागू किया जाए। आवश्यक वस्तुओं के न्यायोचित वितरण के लिए यह आवश्यक है कि उचित खरीद नीति को अपनाया जाए, खरीद–नीति के साथ ही साथ पर्याप्त भंडारण की भी व्यवस्था होनी चाहिए। उपयुक्त खरीद नीति व भंडारण की पर्याप्त व्यवस्था से मूल्य वृद्धि के स्तर में कमी करने और मूल्यों में स्थायित्व प्रदान करने में मदद मिलती है।

**सन्दर्भ सूची:**

1- के.एन. काबरा, द पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम इन इंडिया, ईस्टर्न बुक, न्यू दिल्ली, 2012, पृ. 81.

2- ब्रज. के. तैमिनी, फूड सिक्यूरिटी इन द ट्वेन्टी फर्स्ट सेन्चुरी, कोणार्क पब्लिशर्स, न्यू दिल्ली, 2001

3- कुलवंत सिंह पठानिया, द पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम इन इंडिया, कनिष्क, दिल्ली, 2005, पृ. 68–69.

4- एम.एच. सूर्यनारायण, पीडीएस में सुधार के कुछ मुद्दे, दैनिक जागरण, 12 सितम्बर, 2011.

5- रूद्र दत्त एवं के.पी.एम. सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस.चन्द, नई दिल्ली, 2016, पृ. 542–544

6- राधाकृष्णन रिपोर्ट, 1986–87.

7- विश्व बैंक रिपोर्ट, 2005.

8- राधाकृष्णन रिपोर्ट, पूर्वोक्त.

9- उपरोक्त.

10- अनिल कुमार, द पब्लिक डिस्ट्रीब्यूशन सिस्टम इन इंडिया, रीगल, न्यू दिल्ली, 2011, पृ. 76.

11- महेन्द्र देव और सूर्यनारायण, ''सार्वजनिक वितरण प्रणाली के शहरी पक्षपातपूर्ण और समर्थक अमीर'', प्रभात खबर, 03 जून, 2014.

12- रूद्र दत्त एवं के.पी.एम. सुन्दरम, पूर्वोक्त.